सहजवाणी

भाग–२

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !! ॐ आनन्द !!!

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत् काल परखिये चारि

(संत श्रीआशारामजी)

ॐ

स ह ज वा णी

"इस बालक को आप सामान्य पुत्र रूप में नहीं समझें। यह बालक भविष्य में महान संत बनकर कई लोगों को जन्म जन्मान्तर के कष्टों से छुड़ायगा।" ये शब्द उस ३ वर्ष के बालक आसुमल को देखकर उसके पिता सेठ श्री थाहुमल को उनके कुल गुरु ने कहे थे। आज से लगभग तेंतीस वर्ष पूर्व सिंध प्रांत के मीरपुर खास जिला के बेराणी गाँव में धार्मिक एवं श्रीमंत सेठ श्री थाहुमल के घर में एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ था, जिसका नाम 'आसुमल' रखा गया। बालक के बारे में की गई भविष्यवाणी समय आने पर सत्य सिद्ध हुई और आबू एवं हिमालय की गुफाओं में सात वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात अपना ईष्ट प्राप्त करके, बचपन के वही 'आसुमल' अब परम पुज्य संत श्रीआशारामजी महाराज के नाम से साबरमती

नदी के किनारे, मोटेरा गाँव के पास में एक आश्रम में आए हुए भक्तों को पिछले तीन वर्षों से वैदिक तत्त्व ज्ञान का उपदेश करते हुए नजर आ रहे हैं।

पूज्य स्वामीजी लोगों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास में सहयोग देने वाले योग, आसन प्राणायाम, ध्यान और वेदांत पर सत्संग के कार्य-क्रमों द्वारा समाज जीवन में कायापलट कर रहे हैं। उनके चेहरे पर झलकता दिव्य तेज और वेदांत जैसे विषय पर उनका अधिकार स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ की याद दिला देते हैं। उनके ही मुखारविन्द से भक्तों के सम्मुख सहज प्रसृत वाणी के कुछ अन्शों को यहाँ लिपिबद्ध किया गया है, ताकि अधिकाधिक लोग लाभ उठा सके।

दि० १४-१२-७५

रविवार

सुबह के साढे ग्यारह बज रहे हैं। रविवार होने से आज अधिक भक्त गण आश्रम में आए हुए हैं। कुछ न कुछ काम सभी कर रहे हैं। कुछ बाहर से मिट्टी लाकर खड्डे भर रेहे हैं, कुछ झाड़ू लगा रहे हैं कुछ गोबर व मिट्टी से लिपाई कर रहे हैं। सत्संग भवन के बाहर बोधपर (Black-board) को कुछ भक्त बड़े ध्यान से पढ रहे हैं। उस पर चौक से लिखा हुआ है—शुक्र कहते हैं, हे साधो, जैसा सुख महापुरुषों के दर्शन से होता है, वैसा किसी एश्वर्य या अमृत की वर्षा से भी नहीं होता"। (योगवाशिष्ठ)

ज्योंही स्वामीजी कुटिया से बाहर आए सभी भक्त सत्संग भवन में पहुँच गए। आधों को बाहर ही बैठना पड़ा। स्वामीजी ने अपने आसन पर विराजमान होकर

सबको परम पवित्र प्रणव ॐ का सामूहिक जाप कराया और ध्यान कराया। फिर बड़े गम्भीर स्वर में कहने लगे—

स्वामीजी—राजा भागीरथ को योवन काल में वैराग्य हुआ था। मरूस्थल में कमल उपजना जैसे दुर्लभ है वैसे ही योवन में वैराग्य होना दुर्लभ है। मन को भोगों से हटाकर योग में लगाना, यह पूर्वजन्म के पुण्य कर्मों द्वारा हीं संभव है।

परमात्मा शांत स्वरूप है अद्वेत है आदि अन्त से रहित है यह सब मैंने सुन रखा है पर फिर भी मेरे मन में शांति नहीं है, ऐसा ऋषि त्रितल के पास जाकर भागीरथ अपनी मनोत्यथा प्रगट करता है।

परमात्मा कैसा है यह वाणी नहीं वर्णन कर सकती, फिर भी जिज्ञासुओं के लिये महापुरुष कहते हैं खन्ड-खंड के आनन्द में ही जिनकी बुद्धि रह जाती है वे अखन्ड को कैसे जान सकते हैं? गुड़ मीठा होता है, पर कैसा मीठा होता है, यह आजन्म जिसने गुड़ चखा ही नहीं वह कैसे

वर्णन कर सकता है? वह आनन्द (परमात्मा का) कैसा है यह वही जान सकता है जो उसमे खो गया है जो मर सका है वही पा सका है और मर कर जो प्राप्त करता है उसको ऐसा जीवन मिलता है, जो अमर है।

शिला के ऊपर सूर्य का प्रकाश पडे तो वह उसको परावर्तित नहीं कर सकती, पर आईना कर सकता है। उसके (परमात्मा के) प्रकाश का भी प्रतिबिम्ब आईने की तरह निर्मल हृदय में हीं पड़ता है। बिना निर्मल अन्तः-करण के उसकी चेतनता का आभास नहीं होता।

वह इन्द्रियों की पहुँच के भी बाहर है। इन्द्रियाँ तो अपूर्ण हैं। एक इन्द्री किसी भी वस्तु के एक ही गुण का अनुभव करा सकती है। रसगुल्ले का रंग आँख देख सकती है परन्तु स्वाद कैसा होता है यह जानना हो तो जीभ चाहिये। उसकी कठोरता व कोमलता देखनी है तो स्पर्शेन्द्रिय त्वचा चाहिये। उसको सुगन्ध लेनी हो तो

घ्राणोन्द्रिय नाक चाहिये। और रसगुल्ला तो लाना पड़ता है बजार से। कुछ दिन में वह बिगड़ भी जाता है। उसका आनन्द सदैव रहता भी नहीं है, लेकिन परमात्मा तो सदैव अमर, अविनाशी आनन्द स्वरूप और अपने पास है ऐसा शास्त्रों ने पहले ही वर्णन कर दिया है। मनुष्य ही उसको पहचानने का प्रयास नहीं करता। वह सदैव बहिर्मुख होकर ही व्यवहार करता है।

एक नवयुवक साधु एक कुए के पास से गुजर रहा था। आकाश की तरफ दृष्टि डालकर वह कहता जा रहा था--"वाह! वाह!! क्या मजा आता है। तू सबको रूप का दान करता है। अगली भी कुछ नहीं, पिछली भी कुछ नहीं, बलिहारी है बिचली।" उस कुए पर तीन औरतें पानी भर रही थी। उन्होंने समझा यह साधु हमको देख-कर ऐसा कहता है। वे गाँव में जाकर लोगों को बुला लाई। लोगों ने देखा कि वह साधु एक पेड़ के नीचे बैठा है और मस्त होकर बोल रहा है--अगली भी कुछ नहीं

पिछली भी कुछ नहीं, बलिहारी है बिचली । बिचली औरत का पति आगे आया और साधु को बोला, अरे तुमने आज ही मेरी पत्नि को देखा और बोलते हो 'बलिहारी है' । मैं जीवन भर से उसके साथ हूँ, फिर भी तृप्ति नहीं हुई । पर साधु ने उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया और अपनी मस्ती में वही बात बोलता रहा । अब लोग उस पर गुस्सा करने लगे ।

आप सतत क्रोध नहीं कर सकते । किसी के क्रोध को शांत करना हो तो अपने भीतर शांति धारण कर लो और विचारो—मैं ही सामने वाले क्रोधी के शरीर में लाल हो रहा हूँ, पर इधर मैं शांत ही रहूँगा । धीरे धीरे उसका क्रोध शांत हो जायगा । दुश्मन को कैसे मारना चाहिये ? डंडे या कड़वे शब्दों से दुश्मन मरता नहीं, अपितु दुश्मनी गहरी होती है । उसके स्वभाव को मारना चाहिये । शांति धारण करके भीतर हम आत्मविचार करें तो उसका क्रोध शांत हो जायगा ।

उस साधु को जब ख्याल आया कि ये सब लोग उस पर बरस रहे हैं तो उसने उनको समझाया कि तुम लोग गलत समझे हो । तुम्हारी बुद्धि एवं आँखों की दौड़ केवल उनके मांस और चमड़े तक है । तुम्हारी दृष्टि ही ऐसी है, इसलिये तुम लोगों को सच्चा सुख नहीं है । साधु ने बताया कि मैं तो दूसरी बात सोचकर आनन्द ले रहा हूँ । अगली यानि बाल्यावस्था जो बीत गई, पिछली यानि बुढापा जो अब आयगा । ये दोनों बेकार है । क्यों कि बालक अवस्था तो मूढता में चली गई और बुढापे में शरीर को समस्त शक्तियाँ थक जावेगी तो निराशा ही निराशा रहेगी । इसलिये दोनों अवस्थाओं को छोड़कर अभी की मौजूदावस्था यानि योवनअवस्था है, यही बिचली अवस्था श्रेष्ठ है । इसी में 'चाहे हरिभजन कर, चाहे विषय कमाय, अर्थात् चाहे तो तुच्छ क्षणिक अल्प हर्ष देने वाले पदार्थों के पीछे अपना अमूल्य योवन बर्बाद करो । चाहे तो जिसको पाने के बाद कुछ भी पाना शेष नही रहता, जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता-

ऐसे परम तत्त्व को जानकर विश्व के सम्राट और ब्रह्माण्ड के स्वामी बन जाओ। सदा के जन्म मरण के बन्धन से छूट जाओ। प्रकृति के बन्धनों से छूटना है तो यह योवन अवस्था ही अति उत्तम अवस्था है। बलिहारी है इसकी।

ऐसी योवन अवस्था में भागीरथ त्रितल ऋषि के पास वैराग्य वान हो कर जाता है। ऋषि और संत कैसे होते हैं? उनके बारे में सिंधी में भजन है—

"छड़े शहर बस्तियूँ रहन झंग झड़ में
सहो सूर शक्तियूँ कढ़नि प्या कशाला।'

संत का नाम सुना है, पर उसकी अच्छाई देखनी हों तो उसके नजदीक रहकर उसके चरणों में बैठकर देखना चाहिये। संत को देखने के लिये संत हृदय बनाना पड़ता हैं, नहीं तो केवल उसकी देह ही दिखेगी। हम लोग महापुरुषों के दैहिक अङ्गों के ही दर्शन कर पाते हैं। उनकी वास्तविक दिव्यता के भव्य दर्शनों से वन्चित रह जाते हैं।

ईश्वर के नजदीक वही रह सकता है जो छोटी छोटी चीजों में—आकर्षणों में नहीं उलझा हो, बल्कि उसके (ईश्वर) लिये मिटा हो। उनके (संतों) आदर्शों के नजदीक रहो, शरीर के नहीं। आदर्शों के नजदीक रहना बिल्कुल अलग बात है, और शरीर के नजदीक रहना एक अलग बात है। और ऐसे संत और गुरु भी तत्त्व ज्ञानी होने चाहिये। जो गुरु शिष्य के अज्ञान को नहीं मिटा सकता, वह गुरु नहीं है। 'गु' माने अन्धकार और 'रू' माने प्रकाश। गुरु वह जो शिष्य का अज्ञान रूपी अन्धकार नाश कर ज्ञान रूपी प्रकाश उसके हृदय में जगा दे।

भागवत में परमात्मा का एक नाम 'रस' भी आया है। रसो वैसः वैश्वानरो। भागीरथ ऐसेही तत्त्व ज्ञानी गुरू ऋषि त्रितल के पास जाकर कहते हैं—परमात्मा रस स्वरूप है। मैंने परमात्मा को सुना है। आप उसका स्वाद भी दिला दो।

और आजकल तो खूब गुरु बन जाते हैं और उनको चेले भी खूब मिल जाते हैं । फिर पंथ बढते हैं । पंथों में चेले कैसे बढ़ते है ? गुरु शिष्य को कहता है—

कन्या मन्या कुर्रर; तुममेरी चेली हम तुम्हारे गुर्र ।
रुपयों की थेली धर्रर; तू चाहे तर्रर चाहे मर्रर ॥

सब हँसते हैं ।

इसीलिये स्वामी रामतीर्थ कहते हैं–"जो गलती बुद्ध ने, क्राईस्ट ने व मोहम्मद ने की वह मैं नहीं करूँगा (यानि पन्थ नहीं बनाऊँगा) ।" पन्थ में शिष्य अन्धेरे में रह जाते हैं और नहीं बढ़ पाते ।

जब वैराग्य हो गया और ईश्वर की तरफ मन लग गया तो समझो महा पुरुष की कृपा हुई है । **कुछ पैसा बढ गया, विलासिता बढ गई, मान प्रतिष्ठा बढ गई और सोचें कि हम आगे बढ गए । नहीं, यह तो पतन हो गया समझो** । लाभ की जगह हानि हो जाय तब भी हम वैसे ही सन्तुष्ट रहें तो समझो आगे बढे है ।

एक सेठ थे । उनको एक मित्र सत्संग में ले गया । २–४ बार जाने से, महापुरुषों के दर्शन एवं सत्संग के प्रभाव से हृदय विशेष प्रसन्न होने लगता है । सत्संग में यदि रुचि बढती है तो समझना चाहिये कि हमारे पाप धुल रहे हैं । धीरे धीरे सेठ को सत्संग में रुचि बढी और वहाँ जाना उसकी आदत बन गई ।

आदत डालती हो तो निष्काम कर्म करने की डालो । बीडी चाय पीना, ज्यादा बातें करना आदि की आदत नहीं डालनी चाहिये । जब तक जप न करें, ध्यान न करें, भगवान का नाम नहीं ले, तब तक दिन भर अच्छा ही न लगे ऐसी आदत डालनी चाहिये ।

भगवान का नाम स्मरण करने से निर्भयता आती है । निर्भयता पुण्य की निशानी है । भय पाप की निशानी है । सूली पर चढा दिया जाय तो भी संत निर्भय है । वह सोचता है, इस शरीर को भले ही नष्ट करो । मैं तो दूसरे सब शरीरों में चमक ही रहा हूँ । मंसूर को सूली पर चढाया था—

'लगी मसूर को फाँसी, दिठे जगत दिलदार जे मूरत'

मसूर का शरीर सूली पर था, लेकिन मसूर वहां नहीं थ। वह उस जगह थे जहाँ काल की भी पहुँच नहीं है। मसूर तो अपने स्वरूप में स्थित थे।

पक्की निर्भयता हो तो परम पवित्र ओंकार का उच्चारण करते हुए नेत्र युद्ध किया जाय तो शेरों को भी भगाया जा सकता है। पहले हम आबू की नल गुफा में तपस्या करने गए थे तो बहुत भय लगा। थोडी सी आवाज होती तो लगता रीछ या कोई जङ्गली जानवर आ गया। रात भर जैसे तैसे रहा। सुबह हुआ तो भागा। फिर मन में सोचा, भगवान के रास्ते जाना तो डरना कैसा? ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर? वापस हिम्मत बाँधकर गुफा में आया। पहले गुफा का दरवाजा भीतर से बन्द रखा। फिर अन्दर की साँकल भी खुली रखने लगा। फिर निर्भयता बढी तो रात को दरवाजा भी खुला छोडने लगा। और बाद में तो ऐसी निर्भयता आई

कि रात को १०-११ बजे हिंसक प्राणियों के गुफा गव्हरों के मध्य घूमने जाता था। किससे डरना? उस रीछ सांप आदि से? उनमें भी तो मैं ही बैठा हूँ। (शिवलाल से) क्यों शिवलाल, तुमको भी वहाँ ले गया था न? कैसा लगा था तुमको वहाँ! जरा इन सब को बताओ।

सब शिवलाल की तरफ उत्सुकता से देखने लगे।

शिवलाल—जी बडी भयावनी जगह है वह तो। रात को एक बार आपके साथ घूमने निकला। आप तो एक शिलापर बैठकर ध्यान मग्न हो गए और मैं तो अँधेरे में डरने लगा। हृदय जोरों से धडकने लगा। जरा सी कहीं आवाज आती तो चौकता, शायद रीछ आया। जरा सा कहीं पत्ता खड़कता तो लगता कोई विषधर सांप आ गया। आप ध्यान से उठे तब जी में जी आया।

शिवलाल की बात सुनकर सब हँसने लगे। मगर मारवाडी सोच रहा है—जैसे वह भी शिवलाल के पास उस

भयावने स्थान पर खड़ा है । उसे भी वही अनुभव हो रहा है जो शिवलाल को हो रहा था । कितना जीवट का कार्य है परमेश्वर प्राप्ति की साधना करना । जिस जिसने उसे पाया है सभी को इसी मार्ग से गुजरना पड़ा होगा । क्या मौत के मुँह में गए बिना ईश्वर प्राप्त नहीं होता ? उसको देखने के लिये क्या मरना जरूरी है ? एक बार स्वामीजीने कहा भी था—एक नमक का पुतला समुद्र की गहराई नापने गया था और पुनः नहीं आया यानि वह स्वयं उसमें गलकर समुद्र बन गया । शायद भगवान को पाने का यही अर्थ है कि स्वयं मरकर भगवान में मिल जाना यानि स्वयं भगवान बन जाना । गीता में भगवान ने कहा भी है कि जो मुझे भजता है श्रद्धा से, वह मुझमें ही समा जाता है । यह कुछ विचार प्रवाह मारवाडी मनमें चल ही रहा था कि स्वामीजी की पुनः आवाज सुनाई पडी—

स्वामीजी—ऐसे ही एक बार वहाँ एक मिलीटरी का

अफसर आया । उसने कहा—मेरे पास आज बन्दूक भी नहीं है । आप जरा हमारा बचाव करते रहना । बचाव कोई बन्दूक करती है तभी होता है ? अरे, बचाने वाला तो तुम्हारे साथ ही है हर समय । वह तुम्हारे अन्दर ही बैठा है । उसको यदि दूसरी जगह समझते हो तो तुम्हारी खोपड़ी में भूत है ।

राजा जनक, कबीर साहब, गुरु नानक तुमसे बडे नही थे । मगर हो गए । जैसे जैसे संस्कार अज्ञानता के हटते जांयगे वैसे वैसे हम उनके जैसे बनते जायंगे ।

तो सेठ भी सत्संग में जाते जाते धन्धे में निर्भय हो गया । सत्संग धन्धा नही छुडाता, व्यवहार नहीं छुडाता, अपितु व्यवहार की कमजोरियाँ छुडाता है । सेठ धन्धे में कुशल हो गया । उसे खूब लाभ हुआ तो हिम्मत करके बाजार से एक लाख तीस हजार लेकर व एक लाख बीस हजार स्वयम् की पून्जी लगाकर विदेश से बादाम और काली मिर्च मंगाए । कुछ समय बीतने पर एक दिन मुनीम जी ने

आकर सेठ को बताया कि अपना जो जहाज आ रहा था वह डूब गया। यह सु ते ही सेठ थोडा गम्भीर हुआ। उसने अपने हृदय में झांक कर देखा, लगा जैसे कुछ सोच रहा हो और बड़े ही शांत चित्त से मुनीम को कहा-"जाओ ५००० रु० ले जाओ और इनको सत्संग व योग वेदांत के प्रचार में लगा दो।" मुनीम ने वैसा ही किया। कुछ समय के बाद पता करने पर मुनीम को मालुम हुआ कि जो जहाज डूबा है, वह तो दूसरे का था। उनका जहाज तो बाद में आया है। मुनीम ने हर्षित होकर यह खबर अपने सेठ को दी। सेठ ने थोडी देर कुछ सोचा और मुनीम से कहा–४००० रुपये और निकाल कर सत्संग के प्रचार में लगा दो।

मुनीम ने विचार किया–बड़ी अजीब बात है। अपना जहाज नही आया था, तब धर्म के काम में पैसा लगाया सेठ जी ने यह तो बड़ी अच्छी बात है। पर अब तो जहाज आ ही गया। चौगुना लाभ हो, ऐसे बडे बडे बादाम

और काली मिर्चें आई है। अब ये रुपये और क्यों लगाने के लिये बोला है? इसको क्या जरूरत थी? खैर, कभी मौका आने पर पूछुँगा। क्योंकि किसी ने कहा है, 'राजा योगी, पानी और हाकिम इनको चाल निराली।' इनसे व्यवहार करते समय बहुत सतर्क रहना चाहिये। पानी में जहाज से बहुत माल इधर उधर जाता आता है। यदि असावधानी रहे तो जहाज को पानी समूचा ही निगल जाय योगी और सेठ जब प्रसन्न हों उस समय अपनी शंका का समाधान करना चाहिये।

एक दिन जब सेठ प्रसन्न थे तो मौका पाकर मुनीम ने सेठ के आगे अपनी शंका व्यक्त की। सेठ ने कहा–देखो जब तुमने बतया कि अपना जहाज डूब गया तो पहले तो मैं विचार में पड गया। फिर अन्दर ही अन्दर जब गहराई में उतरकर सोचा तो महसूस हुआ कि इसमें दुःख करने की क्या बात है? धन जोबन का करे अभि-मान सो मूरख मन्द अज्ञान। यह तो चलाचली का मेला

है। दरिया में चलना हो तो मगर से क्या डरना। धन तो आता जाता रहता है। वह स्थायी कभी किसी के पास रहा नहीं। मुझे सत्संग की बातें याद आ गई। मुझे लगा कि वाह ! मेरा दिल यथावत् है। शोकवान नहीं हुआ।

सत्संग में जाने से मैं ईश्वर विश्वासी एवं समानचित्त वाला बन गया हूँ। ज्यों ज्यों ईश्वर में विश्वास बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसका अमृतमय स्वाद आता जाता है और भूख मिटती जाती है। उसी परमात्म तत्त्व में अमरता है। बाकी संसार तो सब सपना ही है। माँ, बाप, भाई, बहन, धन सम्पत्ति, हानि लाभ आदि सब सपना है। जब अपने वास्तविक स्वरूप में जागेंगे तो सब मिथ्या भासित होने लगेगा। लेकिन सपने में कोई कह दे कि यह सपना है—मिथ्या है, इसमें मोह मत रखो, तो उसको अच्छा नहीं लगेगा। कारण कि उसको सपने की मूर्खता ने पकड रखा है। बलिहारी है सत्संग की, जो कि ऐसे बड़े दुख के प्रसंग में और हर्ष के समय में भी चित्त को शांत रख सकता है

इसलिये मैंने क्या बुरा किया यदि सत्संग एवं वेदान्त प्रचार में धन दिया। कहा भी है—

राम नाम के कारणे, सब धन दीनो खोय।
मूरख जाने घटि गयो, दिन दिन दूनो होय॥

वस्तुतः जगत एक सपना ही है। सपने में सपना देखते समय सत्यता महसूस होती है, पर होता वह मिथ्या ही है। महर्षि नारद के साथ ऐसा ही हुआ था। एक बार नारद ने भगवान विष्णु से उनकी माया देखने की इच्छा प्रगट की। भगवान ने कहा-देख लेना। जब भगवान के साथ नारद एक वन से गुजर रहे थे तो नारद को नदी से थोडा पानी लेने भगवान ने भेजा। नारद गए नदी में और सोचा-इसमें थोडा डुबकी मारकर फिर जावें। ज्योंही वे पानी में घुसे और डुबकी मारकर बाहर आए तो वे बदल चुके थे। वे नारद से नारदी बन गये थे, स्त्री बन गए थे। वे अपने आप को भूल चुके थे। संयोग से एक नाविक से उन्होंने ब्याह भी रच लिया। बच्चे भी हो

गए। एक बार नदी में बाढ़ आई। नारदी का झौंपडा बह गया। बच्चे भी बहने लगे। पति भी बहाव को भेंट हो गया। किसी ने साहस करके पति का शव पानी से बाहर निकाला और नारदी के सामने रख दिया। नारदी उसको देखकर पति वियोग में छाती पीट पीट कर रोने लगी। उस समय यदि कोई उसे समझावें कि क्यों रोती है ? यह तो सपना है, तो वह नहीं मानती। क्योंकि वैष्णवी माया में फंसी हुई थी। थोडी देर में भगवान ने आवाज देकर नारद को बुलाया। नारद पानी में से बाहर आए। माया का आवरण हट चुका था। वे पुनः नारदी से नारद बन चुके थे, लेकिन स्मृति शेष थी। भगवान के सामने हक्के बक्के होकर नारद पहुँचे। भगवान मुस्कुरा रहे थे और नारद के सम्मुख कई वर्षों के दृश्य नाच रहे थे। उन्होंने भगवान से पूछा–यह सच्चा है कि वह सच्चा, जो मैंने देखा ! भगवान ने कहा–कोई सच्चा नहीं दोनों मिथ्या थे। यद् दृश्यं तत् अनित्यं।

'जो दिखे सो चालनहार लपट रह्यो सौं अन्ध अन्धार

ऐसा ही सपना राजा जनक ने भी देखा था। सपने में उसने देखा कि वह एक हिरनो के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ जा रहा है। हिरन तो हवा हो गया (आंखों से ओझल हो गया और जनक रास्ता भटक गया। एक शेर ने राजा पर हमलाकर दिया और उसका मुंह हाथ, में ले लिया।

राजा ने हाथ छुड़ाने के लिये, झटका दिया तो हाथ पास में सोई हुई रानी के नाक पर लगा और गरम गरम खून बहने लगा। सपना टूट गया। राजा ने सुबह पंडितों के सामने यह प्रश्न रखा कि वह सच्चा कि यह सच्चा ? पंडित उसके प्रश्न को समझ नहीं सके इसलिये राजा ने कई पन्डितों को नजर कैद कर दिया।

ऋषि अष्टावक्र (उनकी देह आठ जगह से टेढी मेढी थी) राजा के दरबार में आए। उनको देखकर दरबारी सहित राजा हंस पड़ा। अष्टावक्र ने गर्ज कर राजा से

कहा--हे जनक तू चमारों की सभा भर कर बेठा है। इनमें गुणों का पारखी कोई नहीं। सब मेरी तत्त्व निष्ठा को न देखकर शरीर के चमडे को देखकर हँसे हैं। इस लिये इनमें चमार से अधिक कोई नहीं। राजा समझ गया कि यह कोई ऐसा वैसा पन्डित नहीं है। उसने ऋषि का स्वागत किया और उनसे भी वही प्रश्न दोहराया। अष्टा-वक्र ने कहा—कोई सच्चा नहीं, दोनों मिथ्या हैं। अर्थात जिस समय जाग्रत का जगत दिखता है तब सपने का ज़गत नहीं दिखता और जब सपने का जगत दिखता है तब जाग्रत का जगत नहीं दिखता। गहरी नींद में दोनों ही नहीं होते है। अतः जो मिथ्या जगत को सत्य समझ कर जरा जरा सी बातों में सुखी दुखी हो जाता है, वह बालक नहीं तो और क्या है?

मिथ्या क्या है? जो पहले नहीं था, अभी दीख रहा है और बादमें नहीं रहेगा वह मिथ्या है। जैसे मरुस्थल का पानी। मरुस्थल में दूर से पानी नजर आता है, लेकिन

पास में जाओ तो वहाँ रेत ही नजर आती है। परमात्मा है, सत्य है। वह पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा यानि त्रिकालाबाधित सत्य।

परमात्मा को जानना बड़ा कठिन है। एक भक्त था। वह ईश्वर के दर्शन का अभिलाषी था। एक दिन वह एक ब्रह्मनिष्ठ योगी के पास जा पहुँचा और हठ करके कहने लगा कि मुझे ईश्वर के दर्शन करा दो। योगी ने उसे साधना करने की विधि बता दी, लेकिन उसकी उस में पूरी निष्ठा नहीं बैठी। योगी समझ गया कि यह ऐसे नहीं समझेगा। उसने दूसरी विधि की और उस भक्त से कहा कि अच्छा जो तुम बात चाहते हो वह तो उस तालाब के अन्दर एक मच्छ रहता है, वह तुमको बता सकता है। तुम उसके पास जाओ। भक्त उधर गया। योगी अपने योगबल से उस मच्छ में प्रवेश कर गया और किनारे पर आ गया। जब भक्त आ गया तो उसको पूछा कि तुम्हें अमुक योगी ने इस जानकारी के लिए भेजा है न? 'भक्त को बडा आश्चर्य हुआ कि यह मच्छ

तो सब पहले ही जान गया है। उस भक्त की श्रद्धा उस-में बैठ गई। तब मच्छ ने उसे कहा—देखो, मैं पानी में रहता हूँ, फिर भी प्यासा हूँ। सारा पानी मेरे मुह में आकर इधर गलफड़ों से निकल जाता है। तुम कुछ ऐसी विधि बताओ कि यह पेट में पहुँच जावे। फिर मैं तुम्हें भगवान प्राप्ति का मार्ग बताता हूँ।

भक्त ने कहा यह तो बहुत सरल बात है। तुम मुंह में पानी भर कर जरा उल्टे हो जाओ तो पानी पेट में पहुँच जाएगा।

मच्छ रूप में उस योगी ने तुरन्त उस भक्त को कहा, "तुम भी बस उसी प्रकार जो कुछ जानने हो, उसको अन्दर उल्टा कर दो, यानि जरा हृदय में डुबकी लगाओ। अपने मन को अन्तर्मुख करो। परमात्मा स्वयमेव प्रकट हो जायगा।

भक्त की समझ में बात आ गई।

जो जिस ढंग से समझ सकता है, उसको उसी ढंग से समझाना चाहिए। ऐसे ही श्रेष्ठ ऋषि त्रितल के चरणों में

राजा भागीरथ अपनी यौवन अवस्था में जाकर ज्ञान प्राप्त करता है। ऐसा गुरु किसी को बड़े ही पुण्य कर्मोंके फल-स्वरूप मिलता है। यदि ऐसा गुरु किसीको मिल जाय तो उसे अपने को बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए।

हरि ॐ

२४–१२–७५

बुधवार

दोपहर के साढे ग्यारह बजे हैं। सत्संग भवन में स्वामीजी अपने आसन पर विराजमान हैं। भवन के अन्दर एवं बाहर भी भक्त गण बैठे तल्लीन हो स्वामीज़ी के अमृत वचनों का पान कर रहे हैं।

स्वामीजी–वशिष्ठजी महाराज जब सत्संग करते थे तो बडे बड़े सिद्ध, आदि आते थे। जहाँ आत्मवेत्ता महापुरुष सत्संग करते हैं वहाँ कई आकाशचारी गंधर्व, यक्ष, योगि-नियाँ आदि आकर सत्संग सुनते हैं, पर अपने को नहीं नजर आते। ब्रह्मज्ञान के सत्संग की इतनी महिमा है। हमको न दीखने का कारण यह है कि उनका शरीर अन्तवाहक होता है हिता नाम की नाड़ी में मन जब प्रविष्ट होता है तब स्वप्न का जगत दीखता है। वैसे ही हमारा संकल्प अन्तवाहक होता है तब सूक्ष्म जगत दीखता है। जैसे एक ही कमरे में सोये हुए व्यक्तियों में से कोई एक यदि सपना देखता है तो

दूसरा व्यक्ति उस सपने को नहीं जान सकता। वैसे ही स्थूल दृष्टिवाले उन अन्तवाहक शरीरों को जो सत्संग में उपस्थित होते हैं, उनको नहीं देख पाते।

यह जगत आपके संकल्पों से ही रचा हुआ है। जैसी आपकी भावना होगी वैसा हो यह जगत आपको भास आयगा। जगत वही है, पर उसको देखने वाले अपने अपने मन के स्फुरण के अनुसार अपने में अनुभव करते हैं। वे अपना जगत अलग ही बना लेते हैं। जैसे आपका पडोसी आपका शत्रु है, पर दूसरे का वह मित्र हो सकता है। एक ही आदमी है पर कोई माँ उसको बेटा कहेगी, बहन उसको भाई कहेगी, पत्नी उसको पति कहेगी, लड़का उसको पिता कहेगा। कोई उसको मित्र कहेगा तो कोई उसको शत्रु कहेगा। एक ही औरत किसी की ननद, किसी की भोजाई किसी की जेठानी किसी की पत्नी, किसी की माँ तो किसी की बेटी कहलाती है। जिसके जैसे सम्बन्ध व भाव उसके प्रति होंगे वैसा ही वह व्यक्ति प्रतीत होगा। यदि

कोई मरता या जन्म लेता है तो हम दुखी सुखी होते हैं। यह हमारी छोटी बुद्धि के कारण होती है। ईश्वर के घर तो इस सुख दुख का अस्तित्व ही नहीं है।

दुख-सुख, निन्दा स्तुति तो जब तक शरीर है तब तक होती ही रहेगी। बडा से बडा धनी हो, बडा से बडा शक्तिशाली हो, प्रतिष्ठावान हो, धार्मिक हो सबकी निन्दा और स्तुति इस जगत में हुई है तो अपनी तो क्या बात है? अतः दुनियाँ की तरफ ध्यान मत दो। यदि दुनियाँ की तरफ ध्यान दोगे तो अशांति ही हाथ लगेगी। जिनकी छोटी बुद्धि होती है वे छोटी छोटी बातों में उलझ जाते हैं।

महापुरुषों के दर्शन एवं सत्संग से हृदय शुद्ध होता है और छोटी छोटी बातों का मन पर असर कम होता है।

महापुरुष का दर्शन करना हो तो शुद्ध बनकर यानि स्नान आदि करके उनके पास जाना चाहिये। स्नान करने से सतोगुण बढता है। किसी के भी संग करने से एक दूसरे के खराब व अच्छे परमाणुओं का आदान प्रदान होता है। यदि हम स्नान करके पवित्र बनकर उनमें श्रद्धा भक्ति

रखकर जायेंगे तो महापुरुषों के पवित्र परमाणु हमको मिलेगे और हम अधिक लाभ ले सकेगे।

अशुद्ध विचार वाले के हाथों द्वारा बनी या अशुद्ध घर खुराक लेने से, किसी निन्दक के पास बैठने से, या किसी गन्दे विचार वाले व्यक्ति का संग करने से उसके खराब परमाणुओं का प्रभाव हम पर होता है और हमारी बुद्धि का पर्दा मोटा होता है। उससे महापुरुषों के प्रति श्रद्धा घटती है। श्रद्धा के बिना तो कुछ भी ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। श्रद्धावान लभते ज्ञानम्। यदि मोटर में बैठना हो तो ड्राईवर पर भी श्रद्धा करनी पडती है कि वह सही जगह पर ले ही जायगा, कहीं रास्ते में एक्सीडेन्ट तो नहीं करेगा।

हमारा अंतःकरण शुद्ध है कि अशुद्ध इसकी पहचान तो आसानी से हो जाती है। यदि हमारा मन बार बार भोगों की तरफ दौड़ता है, उन्हीं में मजा मानता है तो जानो कि हृदय शुद्ध नहीं है। यदि मन धर्माचरण में, सत्संग

में, किसी का भला करने में लगता है और किसी की निन्दा करने में रुचि लेता है तो जानो अतःकरण अशुद्ध है। औरतों में निन्दा करने का बहुत दोष पाया जाता है। एक के घर की बात दूसरे को, दूसरे के घर की बात तीसरे को कहने में उनको मजा आता है। उनके पेट में कोई भी बात गुप्त नहीं रहती। इस प्रकार करके औरतों ने कइयों के घर बार बिगाडे हैं। अभी कुछ समय पूर्व सिद्धपुर की तरफ एक लडकी अपने ऊपर घासलेट डालकर जल मरी थी। इन सब दुर्घटनाओं के पीछे इसी प्रकार की एक दुसरे की निन्दा करने की आदत हो प्रायः पाई जाती है।

शुद्ध अन्तःकरण में ही भगवान का वास होता है। भगवान कृष्ण गीता में कहते है —

बहुनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते
वासुदेवः सर्वमिति समहात्मा सुदुर्लभः ॥१९॥

"बहुत जन्मों के पश्चात् अन्तिम जन्म में कोई ज्ञान वान होता है। सब कुछ वासुदेव ही हैं, इस प्रकार मेरी प्रपत्ति करने वाला वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है।" ज्ञानवान पुरुष

को ही भगवान का अनुभव होता है क्योंकि उनका अन्तः करण शुद्ध होता है। वे कर्तापन और भोक्तापन से ऊपर उठे हुए होते हैं। भगवान कहते हैं-वासुदेवः सर्वमिति माँ प्रपद्यते। ज्ञानी पुरुष मुझे पहचान लेता है।

भगवान सर्वत्र है, पर अल्पमति के कारण हम उसको नहीं पहचान पाते और अन्याय देवताओं की उपासना में ही संतोष कर लेते हैं व भगवान तक नहीं पहुचते। देवता जिस सत्ता से फल देता है, वह सत्ता भगवान की ही होती है किन्तु अपनी अल्पबुद्धि के कारण भगवान को हम देवता में ही सीमित मान लेते हैं और उतने ही सीमित फल के भागी बनते हैं। तत्त्वरूप से भगवान उसमें भी हैं, किन्तु हमारी सीमित श्रद्धा और पात्रता के कारण हम उनसे थोडा ही प्राप्त कर पाते हैं। यह ऐसा ही है जैसे हम तालाब में एक लोटा लेकर पानी लेने जाते हैं। जबकि यदि बाल्टी ले जावें या सैकडों घडे भी ले जावें तो वहाँ से चाहें जितना पानी हम प्राप्तकर सकते हैं। यह हमारी ही अल्पमति है कि हम लोटा ही लेकर जाते हैं। इसमें हम ही कारण

हैं और छोटी छोटी पूजाओं में, छोटी छोटी बातों में ही फँसे रह जाते है।

कोई देवता को प्रसन्न करने के लिये घंटे घडियाल बजाता है तो कोई बडे बडे तिलक लगाता है और मालाओं के मनके घुमाता है। कोई जप तप और विभिन्न प्रकार की पूजा करता है। कोई नंगे सिर मंदिर में जाता है तो कोई सिर ढककर। किंतु ये सब बाह्य कर्मकांड हैं। इनसे काम नहीं चलता, । इनसे माया के पार नहीं जाया जा सकता।

जप माला छापा तिलक सरै न एको काम।
मन काचे नाचे वृथा साँचे राचे राम ॥

ये बाह्य कर्मकांड करने से, ढोल मजीरे तबले कूटने से ही काम नहीं चलता, क्योंकि अन्दर से मन कच्चा होता है। जब भगवान के रंग में सचमुच रंग जाते हैं, मीरा और शबरी की तरह, तब जानो कि मन सच्चा है। आजकल सर्वत्र समाज में ये बाह्य कर्मकांड देखकर ही लोग समझ लेते हैं कि अमुक व्यक्ति बडा धर्मात्मा है, बडा महात्मा है और उसका ही अनुसरण शुरू हो जाता है।

एक बार मुझे भी एक ने कहा कि स्वामीजी, चलो आपको एक बड़े ज्ञानी महात्मा के दर्शन कराता हूँ। ज्ञानी के दर्शन तो करने ही चाहिये, यह समझ कर मैं उसके साथ एक मन्दिर में गया। वहाँ एक व्यक्ति तान-आलाप व भिन्न भिन्न प्रकार की राग रागिनियों में भजन गाया करता था। अच्छे अच्छे भजन आँख बन्द करके गाने से ही लोगों ने उसे ज्ञानी समझ लिया था। लेकिन मैं तो समझ गया कि यह तो केवल एक भजनी है व मुख की आकृति विशेष बना कर तानालाप करके भजन गाता है तो लोग उसको ज्ञानी समझ रहे हैं। मेरे को जब वहाँ बोलने को कहा गया तो मैंने साफ कह दिया कि यह बहुत अच्छा भगवान का भजन करते हैं। पर इसीसे यदि कोई यह समझे कि कोई अच्छा गाता है या भजन करता है ता ब्रह्मज्ञानी है, तो यह समझना उसकी भूल है। ब्रह्मज्ञानी की तो पहचान ही अलग है।

सच बताने वाले व सच को समझने वाले भी कम ही मिलते हैं। ग्रन्थ साहब संतों की वाणी का संग्रह है। 'गु'माने

अंधकार 'रु' यानि प्रकाश। अंधकार रूपी अज्ञान को मिटाने वाली जो वाणी है वह कहलाती है 'गुरुवाणी'। इन सबको मात्र पढने से ही क्या होगा ? उसको पढ करके समझना और ध्यान आदि करके अपने आचरण में लाना चाहिये। उसका पाठ रखाना व पठन करना आदि की मनाही नहीं है, पर उसके आदर्शों को व्यवहार में न लाकर उसी में जीवन खपा देना कहाँ का औचित्य है ?

ऐसे ही बाह्य कर्मकांड वालों को लोग आदर देते हैं और कई बार ज्ञानी महात्मा छिपे रह जाते हैं। क्योंकि हमारी अल्पमति है। इससे कई बार तत्त्व न समझने वाले कर्मकांडी भी अहंकार के वश हो जाते हैं। एक साधु एक पेड़ के नीचे बैठा तपस्या करता था। स्वाभाविक है कि तपस्या से शक्ति आती है। एक बार एक पक्षी ने जो ऊपर बैठा था बीट कर दी जो साधु के ऊपर पड़ी। साधु ने तीव्र दृष्टि से ऊपर देखा तो पक्षी उसके आँखों के तेज को न सहनकर मर कर नीचे गिर पड़ा। उस तपस्वी ने सोचा

कि अब मेरे में बहुत तपोबल आ गया है। वह उठकर गाँव में मधुकरी के लिये गया। जिस घर के आगे वह खड़ा रहा उसमें एक पतिव्रता स्त्री अभी अभी थककर आए अपने पति की सेवा कर रही थी। उसने कहा 'महाराज, थोडा ठहरना' मैं अभी इधर से निवृत्त होकर आती हूँ। तपस्वी को यह बड़ा अखरा कि मैं साधु हूँ और यह मेरी अवहेलना करके अपने पति की ही सेवा में लगी है। शायद यह जानती नहीं कि मेरे तेज के कारण वह पक्षी भी मर गया था। यदि मैंने क्रोध करके इसको श्राप दे दिया तो.... उसके मन में यह विचार चल ही रहा था कि वह बोली, "महाराज, जरा धीरज रखें, क्रोध न करें। मैं कोई पक्षी नहीं हूँ कि मुझे भी आप अपने तेज से जला दोगे।"

यह सुनकर तपस्वी के अहंकार को बडी ठेस पहुँची। यह कैसे जान गई मेरी व उस पक्षी की बात ? वह स्त्री ज्ञानी थी। उसने कहा, "महाराज यदि ज्ञान प्राप्त करना हो तो असुक गांव में एक कसाई रहता है, उसके पास जाओ।" महात्मा

को रुचि हुई उसको मिलने की और वह उस कसाई के पास जा पहुंचा। कसाई ने उसे देखकर पूछा, "आओ, आपको अमुक स्त्री ने भेजा है न मेरे पास? यह सुनकर तो उस तपस्वी का बचाखुचा अहंकार भी हवा हो गया।

अहंकार किसी का भी हो अच्छा नहीं होता है। वह पतन की ओर ले जाता है। अहंकार धन का होता है, तपस्या का होता है, रिद्धि सिद्धि का होता है, शारीरिक बल का होता है, विद्या का किसी का भी हो यह उसकी प्रगति वहीं रोक देता है। उसे आगे नहीं बढ़ने देता।

तो यदि परमात्मा को प्राप्त करना है तो ऐसे गुरु, ऐसे ज्ञानी जो दुर्लभ है की प्राप्ति आवश्यक है। और ऐसे अभिमानी पुरुष को जिसमें अपनी विद्या बुद्धि धन आदि किसी भी प्रकार का अहंकार भरा हो, गुरु की प्राप्ति नहीं होती। यदि प्राप्ति करनी हो तो गुरु के प्रति सम्पूर्ण रूप तन मन धन से समर्पण होना आवश्यक है।

प्रथम तो ऐसा ज्ञानी महात्मा मिलता ही नहीं और कहीं मिल भी जाय तो अगम्यः होता है। हम पहचान ही नहीं पाते कि यह महात्मा है, क्योंकि हमने अपने मन में ईश्वर और महात्मा की पहचान की एक पूर्व कल्पना बना ली है और उसी से उसको पहचानने का प्रयास करते हैं। फिर भी यदि अपने पुण्यकर्मों के कारण हम पहचान जावें तो उसका संग अमोघ है(अमोघश्च), कभी व्यर्थ नहीं जाता। जो बहुत पुण्यकर्म किया होता है, वैराग्यवान एवं श्रद्धालु है उसके लिये महात्मा सुलभ है और जो संसार में आसक्त है, श्रद्धासम्पन्न नहीं है व अल्पमति है, छोटी छोटी बातों में ही उलझ जाता है, उन्हीं में सुख ढूँढ़ता है उसके लिये वह दुर्लभ है।

हरि ॐ

२८।१२।७५

रविवार, रात्रि

रात को ११।। बजे हैं। स्वामीजी अपनी कुटिया से बाहर आकर आश्रम के प्रांगण में घूम रहे हैं। उन्हें देख-कर मारवाडी सहित १०–१२ साधक भी भवन के बाहर आकर एक ओर खडे हो जाते हैं। हम सबको देखकर स्वामीजी थोडी देर बाद हमारे पास आकर खडे हो जाते है और एक भक्त से जोकल से ही आश्रम में निवास कर रहे हैं (और एक भक्त से जो कल से ही आश्रम में निवास कर रहे हैं) और एक साबुन को फेक्ट्री के मालिक हैं, पूछते हैं-स्वामीजी–क्यों, तुम कल से यहाँ रह रहे हो, १२–१५ लोगों में से कोई आपस में राग द्वेष करता नज़र आया है?

वह–नहीं स्वामीज़ी। यहाँ तो सभी शांत भाव से, एक दूसरे का बहुत आदर करते हुए रह रहे हैं। इतने मेल जेल से रहने का दृश्य तो मुझे कहीं भी अन्य जगह देखने को नहीं मिला है। घर में तो दो बर्तन हों तो भी आपस में खड़कते रहते हैं। पर यहाँ तो........।

मारवाडी–स्वामीजी, हम मनुष्यों की तो बात छोड दें, मैंने तो यहाँ दूसरे जीवों में भी द्वेष भाव नहीं देखा है। एक बार मैं नदी पार करके आश्रम में प्रविष्ट हो रहा था। शाम का समय था। सूर्य अस्त हो रहा था। यकायक नीचे पैरों के पास आहट हुई। देखा तो गज़ भर लम्बा एक सर्प दोनों पैरों के बीच में से निकल गया। निकलने के बाद मुझे विचार हुआ कि यदि थोड़ा सा असावधान होता तो शायद मेरा पैर उसके ऊपर पड़ जाता, क्योंकि वह तो पहले से ही वहाँ बैठा था। आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि पैरों के बीच से ही वह अपने आराम में खलल डालने वाले को काटे बिना ही क्यों निकल गया? पहले भी कई बार इधर उधर अन्य साधकों ने दो दो सांप यहाँ साथ में देखे हैं, पर किसी को काटा हो ऐसा नहीं सुनने में आया। मैंने पहले पुस्तकों में पढ़ा था कि जहाँ ऋषि मुनि तपस्या करते थे वहाँ सब पशु पक्षी अपना शत्रु भाव भूलकर व्यवहार करते थे। कुछ महापुरुषों के तपस्या

करने के कारण उस भूमि में भी ऐसी पवित्रता आ जाती थी कि उस भूमि पर सभी जीव अपना द्वेष भूल जाते थे। अपने आश्रम की भूमि में भी वही पवित्रता आ गुण आ गया है, ऐसा मुझे तो लगता है।

स्वामीजी (विषय बदलकर)—आज मेरे पास पहली ही बार एक व्यक्ति आया और बोला—'स्वामीजी ऐसी कृपा करें कि मेरे धंधे में बरकत (लाभ) हो।' और मैंने उसको इतना फटकारा कि वह एकदम स्तब्ध हो गया। वह बहुत विषयी और कामी था। उसको देखकर मेरे हृदय से अपने आप फटकार पूर्ण शब्द निकल पडे। उसको आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी को यह सब कैसे पता लगा। मुझे भी ऐसा लगा कि उसको पहली ही बार मैंने इतना क्यों फटकारा? जो भी हुआ अच्छा हुआ। मैंने देखा कि उसको अपनी विषय आसक्ति पर काफी पश्चाताप हुआ था। अच्छा है वह सुधर जायगा। मैंने उसको कुछ उपाय भी करने के लिये

बता दिया है। डांटने पर दुःख होता है, पर उनका भला हो, इसके लिये डांटना ही पड़ता है।

संत भले ही किसी को कुछ भी कहें, पर संत को कोई कुछ नहीं कह सकता। यदि कोई मूढ उसको सता भी दे तो संत सदैव उसको आशीश ही देते हैं कि भगवान उसको सद् बुद्धि दें। मूढ के प्रति भी संत के हृदय में कभी दुर्भाव नहीं पैदा होता। परन्तु प्रकृति कई बार संतो के प्रति उसका दुर्व्यवहार सहन नहीं करती और किसी न किसी रूप में वह सजा प्राप्त कर ही लेता है (मारवाडी से) क्यों मारवाड़ी, कैसी बात है? ठीक कहता हूँ न?

मारवाड़ी—स्वामीजी, यह तो बिल्कुल सही बात है। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा भी था कि भगवान किसी के द्वारा किये गये अपने प्रति अपराध को क्षमा कर भी देता है, परन्तु अपने भक्तों के प्रति अपराध उसे कभी सहन नहीं होता।

स्वामीजी—महापुरुष किसी भी दरवाजे पर चला जाय, उसकी सेवा करने में गृहस्थ को अपना अहोभाग्य समझना

चाहिये। यदि वह उस दरवाजे पर जाकर भूखा रह जाय तो उस गृहस्थ का बहुत समय का कमाया हुआ पुण्य क्षीण हो जाता है। संतों की सेवा बड़े भाग्य से ही मिलती है।

कुछ साधक स्वामीजी के पैरों की तरफ देख रहे हैं। स्वामीजी कपडे के लाल फटे हुए जूते पहने हुए हैं। स्वामी जो साधकों को अपने पैरों की तरफ देखते हुए पाकर समझ जाते हैं कि इनकी नजर जूतों के दारिद्रय पर है। अतः कहते हैं—

स्वामीजी--तुम लोग मेरे जूतों की तरफ देख रहे हो। अरे इनके फटे होने से क्या फर्क पड़ता है? एक बार एक भक्त मेरे पैरों में पडा तो उसकी दृष्टि मेरे इन्हीं जूतों पर पड गई। वह बोला--'स्वामीजी आप ऐसे फटे जूते पहने हैं!' उसकी आँखों में से आँसू टपक पड़े। उसने कहा--'आप नये जूते मैं भेज देता हूँ वह पहन लेवें और आपको जब भी जरूरत हों तब आप मुझे इधर किसी के द्वारा पत्र

लिखवा देबे, में कपडे या जूते भिजवा दूँगा, पर आप फटे हुए नहीं पहनना।' वह भक्त बहुत श्रद्धालु है। उस दिन वह मेरे सामने खूब रोया। उसे ऐसा समझ में आया है कि शायद स्वामोजी के पास अभाव है, इसलिये ये अच्छे कीमती कपडे व जूते नहीं पहन पाते होंगे। क्यों, आप लोग क्या कहते हो? अपने पास किसी बात का अभाव है क्या?

सभी मुस्कुराने लगते हैं और कोई जवाब नहीं देते। मारवाड़ी ने कई बार देखा है कि स्वामीजी के पास कई सफेद चद्दरें, जूते, चप्पलें बैठने के आसन आदि आते रहते हैं। परन्तु स्वामीज़ी उनको अपने भक्तों को देते रहते हैं। अभी कुछ दिन पहले एक भक्त को उन्होंने अपने लिये आई हुई नई चप्पलें दो थी और आप वही पुराने जूते पहने रहते हैं। एक भक्त को उन्होंने अपने ओढने की सफेद चादर दे दी थी। अभी उनके लिये एक बढिया कीमती पलंग (सनमाईका लगा हुआ) तैयार होकर आया था, परन्तु उन्होंने उसे अपने कमरे में नहीं रखने दिया। प्रसाद

भी भक्त खूब लाते हैं, परन्तु वह पुनः उन्हीं में वे मुक्त हस्त से वितरित कर देते हैं। किसी गरीब की बेटी का ब्याह हो या किसी गरीब पर कर्जे का भार हो, सबमें स्वामीजी की अप्रत्यक्ष सहायता इस प्रकार होती है कि किसी को कानों कान खबर भी नहीं हो पाती। मारवाडी ने स्वामीजी को काफी दिन तक एक फटे बनियान में ही देखा है। ऊपर चद्दर ओढ़ लेने के कारण वह फटा बनियान किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता था। वह सोचता है—स्वामीजी यह ठीक ही कहते हैं कि सुख दुःख बाह्य वस्तुओं में नहीं होता है।

स्वामीजी—धन व सत्ता की वासना कभी नहीं रखनी चाहिये। जिसको भगवान अपने से दूर रखना चाहता है, उसे धन व सत्ता देता है।

मारवाडी—(हाथ जोडकर) परन्तु स्वामीजी, ये चीजें अच्छे कर्म किये हुए होते हैं, उन्हीं को मिलती हैं, ऐसा कहते हैं।

स्वामीजी—हाँ, तपस्या व अच्छे कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाते। जैसे माँ बच्चे को बहलाने के लिए खिलौना डाल देती है तो वह माँ को भूल जाता है और खिलौने में रम जाता है। वैसे ही भगवान भी ऐसे धन आदि मायावी पदार्थ दे देता है और लोग उसी में प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु जो उसमें संतोष नहीं करता और लगा रहता है अपने पुरुषार्थ में कि मैं तो ईश्वर को ही पाऊँगा, तो फिर ईश्वर स्वयं आता है।

धन कितना चाहिये? बस इतना ही कि खुद भूखा न रहूँ, और दरबाजे से भी कोई मेहमान भूखा न जाय। अन्यथा बहुत धन और सत्ता जिसको मिल जाती है वह कितना ही ध्यान रखे, उसमें थोड़ा बहुत 'मैं' पना (अहंकार) आ ही जाता है, जो उसे भगवान से दूर रखता है। देखो, घड़ी में कितने बजे हैं?

एक साधक (घड़ी में देखकर)—साढ़े बारह।

स्वामीजी—रात अधिक हो गई है। जाओ सुबह जल्दी उठकर ध्यान भजन करना।

और तेज कदमों से स्वामीजी अपनी कुटिया में चले जाते हैं। मारवाड़ी यह सोचता हुआ कि स्वामीजी रात्रि को इस नीरव शांति में कितना अमुल्य सत्संग सहज बात-चीत में दे जाते हैं, सोने की तैयारी करता है।

ॐ अपमान तो तुम्हारी आत्मा की ज्योति को जाग्रत करने वाला है। तुम्हारी विस्मृति को नष्ट करके स्मृति को ताजा बनाने वाला है। अपमान क्षोभ का नहीं, प्रसाद का जनक है। अपमान होते ही प्रसन्नता से खिल उठना चाहिये कि मेरी स्मृति ताजा करने के लिए साक्षात भगवान स्वयं आये हैं, महान सौभाग्य है। मान में तो सभी प्रसन्न रहते हैं। वीर हम उसे कहेंगे जो अपमान में भी प्रसन्न रहे।

ॐ जो प्रतिकूलता को अपनाते हैं वे भगवान के सम्मुख होते हैं। भगवान जिसे अपने से दूर रखना चाहते हैं उसे अनुकूल परिस्थिति देते हैं। वे ही तत्त्वदर्शी संत हैं जिन्हें सभी वस्तुएं अनुकूल और पवित्र, सब घटनाएं लाभकारी, सब दिन शुभ, सभी मनुष्य देवता रूप दिखाइ दें।

ॐ सच तो यह है कि परिस्थिति जितनी कठिन होती है, वातावरण उतना ही पीड़ाकर होता है। उन परिस्थितियों से निकलने वाले उतने ही बलिष्ट होते हैं। अतः इन समस्त बाहरी कष्टों और चिन्ताओं का स्वागत करो। इन परिस्थितियों में भी वेदान्त को आचरण मे लाओ। और जब आप वेदान्त का जीवन व्यतीत करेंगे, तब आप देखेंगे कि समस्त वातावरण और परिस्थितियाँ आपके वश में आ रही हैं, वे आपके लिये उपयोगी हो जायेगी।

ॐ ज्ञानी सदा अभय तथा निश्चित नित्य अपने आपमें तृप्त, शान्त एवं गंभीर रहता है। जो हर्ष—शोक, लाभ—हानि, संयोग—वियोग, सम्मान तथा अपमान के अवसर पर सम एवं अचञ्चल रहता हो जो सत्य वस्तु को जानता हो, वह असत वस्तु का लोभी, मोही, अभि-

मानी नहीं रहता। वह दूसरों के शोक को हर लेता है। ज्ञानी क्षमा करने में वीर होता है।

ॐ जिस समय हमें कोई कत्ल करने को तैयार हो और हम प्रसन्नता से उसके लिये तैयार रहें- हमारे हृदय में किसी प्रकार का भय या विषाद उत्पन्न न हो, उस समय समझना चाहिये कि हमने रागद्वेष पर विजय प्राप्त की है। अथवा जिस समय हमारी दृष्टि पड़ते ही सिंह दि हिंसक जीवों की हिंसा वृत्ति दूर हो जाय, उस समय राग द्वेष का अभाव समझना चाहिये।

ॐ दुर्बलता के कारण ही मनुष्य पर सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख आते हैं। दुर्बलता ही मृत्यु है।

प्रकाशक– श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
मोटेरा आश्रम, साबरमती नदी के किनारे,
अहमदाबाद।

मुल्यः— ५० पसा

फागण सुद पूर्णिमा प्रथम आवृत्ति
१६ मार्च, १९७६ प्रति–३०००

Printe by K. D. Hotwani at Ramanand
P. press. Ahmedabad—22